शीलत्व की सौरभ

आचार्य जयन्तसेनसूरि

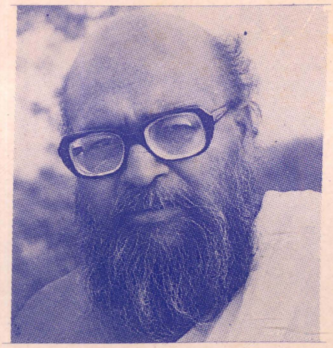

रे चिर प्रवासी! शील-संयम धार जीवन में सदा।
उत्तम कहा श्रृंगार है, यह बाह्य-भीतर सर्वदा॥
इससे मिटे दुर्भाग्य अपना, नित्य पावे संपदा।
पग-पग सफलता आ मिले, यह दूर करता आपदा॥

रे चिर प्रवासी! शील संयम शक्ति जीवन की कही।
इसको सदा ही पालना, इसके बिना सिद्धि नहीं॥
मन-वचन-काया शील का, पालन किया जिसने यहाँ।
सुख शान्ति पायी सर्वदा, उसने गया जब भी जहाँ॥

।।ॐ अर्हंनमः।।

।।श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वर गुरुभ्यो नमः।।

शीलत्व की सौरभ

विश्व विश्रुत शीलधर्म के अलौकिक उपासक - पालक
विजय शेठ-शेठाणी का जीवन वृत्तांत

लेखक
प. पू. आचार्यश्री जयन्तसेनसूरीश्वरजी 'मधुकर'

प्रकाशक
श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट - अहमदाबाद/बम्बई

- **पुस्तक-** शीलत्व की सौरभ

- **लेखक-** प. पू. आचार्य श्री जयंतसेनसूरिजी

- **प्रकाशक-** श्री राजराजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट
  अहमदाबाद - बम्बई
  श्री वीर सं. २५१७, श्री राजेन्द्रसूरि संवत ८५
  विक्रम सं. २०४८; ई. सन् १९९१

- **मूल्य-** पाँच रुपये

प्राप्ति स्थान

- **श्री राजराजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट**
  श्री राजेन्द्रसूरि जैन ज्ञान मन्दिर
  रतनपोल, हाथीखाना
  श्री राजेन्द्रसूरि चौक, **अहमदाबाद (गुज.)**

- **जे. के. संघवी (सम्पादक)**
  शाश्वत धर्म कार्यालय
  जामली नाका-**थाने (महा.)**

- **परिषद भवन**
  बस स्टेन्ड, राजगढ़,-धार (म. प्र.)

- **मुद्रक :** टाईपसेटींग - लेजर प्रिन्ट मास्टर, डोम्बीवली (थाने)

- **प्रिंटिंग :** डपूजी आर्ट प्रिन्टर्स, माजीवडे, थाने-१

॥ गुणाः पूजास्थानम् ॥

पूज्य वही है जो पूज्यता के गुणालंकारों से मंडित है। गुण ही अलंकार बनकर व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं आत्मा की आभा को आलोकित करते हैं।

जहां गुण नहीं वहां शून्य है, जंगल है और वह अनेक अमंगलों का उद्भव स्थान बनता है।

गुण ही द्रव्य की प्रतिभा को प्रकाशित करते हैं और गुण ही वस्तु की वास्तविकता के परिचायक बनते हैं।

मानव जीवन का बाग गुणरुप पुष्पों की सुगन्ध से सुरभित बनता है तब वह बाग जीवन की प्रगतिकारक प्रकृतियों से सुसज्ज हो जाता है।

गुणों की श्रंखला में शील-संयम अपने आप में प्रधानतम गुण है, जो व्यक्ति का जीवन स्वरुप निखारता है और साधना पथ की सिद्धि एवं सिद्धियों का प्रदायक बनता है।

इस गुण के प्रभाव से अनेक जीवात्माएँ जीवन को धन्य बना गई/सार्थक कर गई।

गुण की गरिमा अपने आप में विकसित करने के लिये परमतम सहायक शीलधर्म को जीवन का श्रेष्ठतम साथी मानना चाहिये।

प्रस्तुत प्रकाशन में विश्वविश्रुत शीलधर्म के अलौकिक उपासक, पालक विजय शेठ और विजया शेठानी का जीवन सर्व तो प्राक् है, उनकी जीवन कथा को संक्षिप्त में आलेखित किया गया है। जो सभी के लिये प्रेरक बनेगा।

शुभम् ।

जयंतसेनसूरि

खाचरौद

दि. १२/७/९१

विजय शेठ विजया शेठाणी नी सज्झाय

(रासिओ-अे राग)

धन धन विजय शेठ शेठाणी विजया पाल्यो शियल महान -डेक,

परणीने निज पति घर आई, हियड़े हर्ष अपार,
पिउ मन्दिर पहुंची मदमाती, सज सोलह सिणगार. ।।ध. १ ।।
अन्धारी को व्रत है म्हारे, सुण शेठाणी बात,
तीन दिन बाकी है, पीछे सुख विलसां दिनरात. ।।ध. २ ।।
वचन सुणी मुखड़ो विलखाणो, बदन गयो कुम्हलाय,
किसतर निभसी प्रीत पिउ सूं, अब कंई करुं रे उपाय।।ध. ३ ।।
उतर्यो मूंडो देख शेठजी, करे प्रेमसूं बात,
क्यों थे सोच करो सुकलनी, तीन दिनां की बात ।।ध४ ।।
कहे शेठानी सुणो शेठजी, खूब बनी है आय,
अंधारी को नियम आपके , म्हारे उजारी माय ।।ध५ ।।
इण कारण है अरज आप सूं, परणो दुजी नार,
सुख विलसो उण साथ प्रेम सूं, म्हे लां संजमभार ।।ध६ ।।
संजमभार लेओ मत सजनी, दुजी परणां नांय,
शीयल पालस्यां दोनों साथे, उत्तम अवसर पाय. ।।ध७ ।।
घृत अग्नि को साथ निभे नहीं, पाले सो पुण्यवान
दोनों सोता ईक सेज पर, मनने राख्यो ताण. ।।ध८ ।।
इणतर कई वर्ष तक दम्पत्ति, पाल्यो शियल सुजान,
विमल केवली करी प्रशंसा, यह दोनों उत्तम प्राण ।।ध९ ।।
प्रकट हुई या बात तो लीनो, दोनों संजमभार
कर्म काट निर्मल देहधारी, धन धन तस अवतार ।।ध१० ।।
शियल पाल राजेन्द्र बने और शियल से यतीन्द्र कहाय,
शियल तपस्या ताप के कुन्दन, तु सच्चा बन जाय. ।।ध११ ।।

शीलत्व की सौरभ

भ्रमण करता हुआ मैं मेरे बचपन से चिर परिचित नगर में एक बार जा पहुँचा। मन में बड़ी उमंग थी, पर वहाँ के परिवर्तित दृश्य देखकर कुछ सोचने को भी मजबूर हो गया।

नगर के बाहर रहा हुआ वह वटवृक्ष, जो कभी अपनी शाखा प्रशाखाओं से पल्लवित हो फूलाफला रहता था, और पथिकों को अपनी सघन छाया से विश्राम देता था, आज निष्प्राण-सा दिखाई दे रहा था और उसकी टहनियाँ रसहीन हो गयी थी। निर्जीव मानव कंकाल-सा, ठूँठ होने की स्थिति तक पहुँचा हुआ वह भुतहा वटवृक्ष बड़ा बीभत्स लग रहा था। समय की मार अमोघ होती है। उससे कोई छूट नहीं सकता। आज का युवक कल देखते-देखते मुमुर्षु दिखाई देने लगता है।

मुझे उस वटवृक्ष से बड़ा मोह था। अपने बचपन की कई चाँदनी रातें मैंने उसके साथ अठखेलियाँ करते हुए गुज़ारी थीं। उसकी जटा-सी जड़ें खींच-खींच कर, उनसे लटक-लटक कर उसे पौत्र सुख प्रदान किया था और उससे अपार स्नेह पाया था, पर अब जब मैंने देखा कि मेरा प्यारा वटवृक्ष अपने इतिहास के साथ संसार से अलविदा होने की तैयारी कर रहा है, तब मैं कुछ सोचने के लिए मज़बूर हो गया। मेरा विचार चक्र गतिमान हुआ।

"हे आत्मन्! बस यही संसार है! संसरण करना संसार का धर्म है। परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। तूने यहाँ क्या पाया? क्या खोया? इस पेड़ की स्थिति का सम्यग् अवलोकन कर और इससे कुछ प्रेरणा ले।"

मैं कुछ उदास-सा हो गया और आगे बढ़ा। सामने देखा, तो एक मानव आकृति अपनी ओर आती हुयी दिखाई दी। चेहरा कुछ परिचित-सा लग रहा था, पर स्पष्ट याद नहीं आ रहा था। मैं सहज उसकी ओर देख रहा था। अचानक याद आया। अरे! ये तो हमारे गुरुजी हैं। बचपन में मैं इनके पास ही तो धार्मिक पाठ ग्रहण करता था। उस समय उनका जो रूप था, वह आज दिखाई नहीं दे रहा था। उनका वह रूप और प्रभाव तो

कुछ और ही था।
जो कभी अपनी चमकीली आँखों से ही हमें अनुशासन में रखा करते थे, आज उनकी उन्हीं आँखों पर मोटी फ्रेमवाला चश्मा लगा हुआ था। उन आँखों की तेजस्विता और चमक इतिहास में जमा हो गयी थीं। जिनकी तेज तर्रार और गंभीर आवाज से हम भीगी बिल्ली बन जाते थे, आज उनका मुख अजन्ता की गुफा-सा मूक बन गया था। वह निरीहता और भोलेपन से दयनीय हो गया था। गोरा चिट्टा, सेव-सा खूबसूरत शरीर आज चूसे हुए आम-सा सलवट भरा दिखाई दे रहा था। शरीर में से व्यक्तित्व की सौरभ खत्म हो रही थी। उनके शरीर की प्रत्येक झुर्री अतीत की कहानी बन गयी थी। स्तंभ-सा उनका शरीर जो किसी भी प्रभाव के आगे झुकता नहीं था, वह आज १२०ॅ का कोण बना हुआ था।
वे मेरे नज़दीक आये और मैं उनके आगे श्रद्धा से झुक गया। आखिर वे मेरे गुरुजी जो थे। अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए मैं उनसे मिला। अतीत को बिदा करते हुए मन बड़ा उद्विग्न हो गया। परिवर्तन के शाश्वत नियम को कड़वे घूँट-सा गले के नीचे उतारा। उनके झुके हुए शरीर को देखकर सोचने लगा—
ये नीचे झुक-झुक कर क्या ढूँढ रहे हैं? लगता है, ये अपना अतीत ढूँढ रहे हैं, अपनी जवानी ढूँढ रहे हैं। अरे, यही तो संसार है। इसमें हर ताजा पदार्थ बासी होकर सड़ने लगता है।
किसलय चिक्कन और पुष्प केसर की महक से महकते पौधों के सूखे पत्ते अपनी शालीन दास्ताँ कहते हैं। उनके वर्तमान को सावधान करते हुए वे कहते हैं कि कल तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है।

पीपल पान खरन्त, हँसती कूँपलियाँ।
हम बीती तुम बीतसी धीरी वो बापलियाँ।।

पीपल का पीला पत्ता जो नीचे गिरा, तो कोपलें हँसने लगीं। वे उसे तिरस्कार भरी नज़र से देखने लगी, तब वह पत्ता बोल पड़ा — "अरे! तुम लोग हँसो मत इठलाओ मत। हम पर जो आज बीती है, वही कल तुम पर बीतने वाली है। थोड़ा विचार करो।"
प्रकृति के प्राङ्गण में हम सूरज से लेकर एक नन्हे से पौधे तक का परिवर्तन नित्य

देखते हैं, फिर भी स्वयं को अक्षुण्ण एवं अपरिवर्तनीय मानते हैं। प्रकृति का कण-कण जीवन की क्षण भंगुरता की कहानी सुनाता है, पर मनुष्य सुनता नहीं है। मनुष्य बड़ा अज़ीब है। अपने जीवन को सुधारकर वह दिव्य आत्मानुभूति में कभी रमण नहीं करता। छल, कपट, दंभ, मोह तथा वासनाओं में अपने जीवन की समस्त पूँजी गँवा बैठता है और जब इन्द्रियों की शक्ति का दिवाला निकल जाता है, तब वह ज्ञान और वैराग्य की शरण लेता है। ऐसे मुर्दादिल को ज्ञान और वैराग्य से भला क्या लाभ होने वाला है?

इस परिवर्तनशील संसार में जीवन बदलने वाले तीर्थंकर हो गये, प्रत्येक बुद्ध हो गये और वे मोक्ष मार्गी बन गये। जो कर्मकल्मश से स्वयं को मलिन करते रहे, वे संसार भ्रमण करते हुए नीचे ही नीचे नरकों में स्थान पाते गये। दोनों मार्ग अपने सामने हैं। हे पथिक! तू स्वयं सोच ले तुझे कहाँ जाना है?

परिवर्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते?

इस परिवर्तनशील संसार में ऐसा कौन है, जो मरा नहीं है? जो जन्मता है, वह मरता ही है। फिर जन्म लेना किसका भला है? कीड़े-मकोड़े और चींटी-पतंगे की मौत मरते हुए अमर कौन बना है? इसलिए जीना है, तो हजारों के कल्याण के लिए और मरना है, तो करोड़ों से पूजा पाने के लिए ही। यही तो जिन्दा मौत है और शेष मरा हुआ जीवन।

जो सत्कृत्य और परोपकार से निज जीवन को सार्थक बनाने हुए समस्त विषय-कषायों से छुटकारा पाकर संसारी जीवों को सन्मार्ग की राह बताते हैं, वे ही अमर है। वे देवतुल्य हैं।

ऐसे देव पुरुषों का जीवन आदर्श बन जाता है। उनका मार्ग मुक्ति मार्ग बन जाता है, उनकी वाणी शास्त्र बन जाती है, उनकी दृष्टि करुणा आवर्त्तक और पुष्करावर्तक मेघ बन जाती है, उनका आवास तीर्थ बन जाता है और उनका यश भक्ति संगीत बन जाता है। तो क्या इस ओर कभी देखा भी है? कभी सोचा भी है, इसके बारे में? कभी नहीं।

जन्म लिया अरू पदवी पायी, निवृत्ति आयी चल बसे।

यह जीवन दर्शन क्या है? किसका मार्ग प्रकाशमान करनेवाला है यह? दिन रात रोटी, कपड़ा और मकान के इर्दगिर्द चक्कर काटना कौन-सा दर्शन है? अँजुली

में रहे हुए पानी के समान यह आयु बूँद-बूँद घटती जा रही है, यौवन बुढापे को आमंत्रित कर रहा है, लक्ष्मी विद्युत्-सी चमक दिखाकर अदृश्य हो रही है। काल के व्याल मुख में देखते-देखते दादा, पिता, चाचा आदि जा रहे हैं और खुद अमरता के सपने सँजोये अकड़कर बैठा है। यह कैसी अक्ल है? कौन-सी बुद्धिमानी है?

हम दूसरों के बारे में जितना सोचते हैं, उतना स्वयं के बारे में नहीं! दूसरों के गुण-दोषों को जीवन की शान पर चढ़ा कर उनकी आलोचना करने की कला कोई सीखना चाहे, तो सीख ले हम से। पर स्वयं के बारे में हम पूरे बेख़बर हैं। हम हमारे अधिकतम निकट रहे हुए स्वयं को नहीं देखते और हम दूर से आकाश के तारे गिन लेते हैं। यह ठीक नहीं है। सबसे प्रथम आवश्यक है निज को पहचानना। KNOW THYSELF स्वयं को पहचानो। भगवान का कथन है — जिसने एक को जान लिया, उसने सबको जान लिया। वह एक है स्वयं आत्मा।

अप्प दीपो भव।

स्वयं आत्मदीप बनो।

जरा स्वयं को देखो! संसार में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को बुद्धिमान और दूसरों से ज्यादा संपन्न समझता है। जरा देखो तो सही, अपना धन है कितना? क्या मूल्य है उस धन का ज्ञानी की नज़रों में? कभी सत्पुरूषों, महात्माओं और संतों की वाणी का श्रवण किया है? साधु पुरुषों के संग बैठकर, उनके दो शब्द सुनकर अपनी कुल जमा पूँजी का मूल्यांकन नहीं किया, तो फिर यह जीवन निरर्थक है। संसार के ऐश्वर्य और भोगविलास को लात मार, वैराग्य धारण कर जो वनवासी हो गये और साधना की असिधारा पर चलते हुए दुःखी और सन्तप्त आत्माओं का कल्याण कर गये, उन्हें मोक्षमार्ग का दर्शन कराकर जो स्वयं जीव से शिव बन गये, क्या उनकी ओर अपना ध्यान गया है? क्या वीतराग द्वारा प्ररूपित धर्ममय जीवन स्वयं का बनाकर उसे सार्थक करने का प्रयत्न किया है?

क्या परमात्मा के क्षमा भाव को जीवन में उतारने का कभी प्रयत्न किया है? क्या सर्प सम दुष्टों के विष को अमृतोपम मानकर उसका प्राशन किया है? उनके उपसर्गों को समता भाव से सहन कर क्या उन्हें शुभाशीष प्रदान की ? भगवान महावीर के जीवन का जरा अवलोकन करो। कैसा था उनका उपसर्ग कर्ता के

प्रति व्यवहार? उनके प्रति भी उनकी आँखें करुणाभीनी हो जाती थी।

कृतापराधे ऽ पि जने कृपामन्थरतारयोः ।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं श्री वीरजिन नेत्रयो : ।।

संगम देव ने उन पर छह-छह महीने तक अनेक प्रकार के उपसर्ग किये और उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी; पर भगवान अपने ध्यान से जरा भी विचलित नहीं हुए। अन्त में संगम हारा और उनके आगे हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। बोला - "अब मैं चला। आप सुखपूर्वक विहार कीजिये।" उस समय भगवान की आँखों में आँसू डब-डबा आये। यह देखकर संगम आश्चर्य चकित रह गया। वह पूछ बैठा - "अब जबकि मैं बिदा ले रहा हूँ, आपकी आँखे बाष्पार्द्र क्यों हो गयी?

इस प्रश्न का भगवान ने जो उत्तर दिया, उससे उनकी करुणा की व्यापकता प्रकट हो गयी। भगवान ने कहा - "संगम! तूने मुझे जो-जो भी कष्ट पहुँचाये हैं, वे तो कुछ भी नहीं हैं। ऐसे असंख्य कष्ट मैं सह सकता हूँ। मेरी आँखों से आँसू की एक बूँद भी नहीं ढुलकेगी। तू ऐसे दुःख सहन करने में अक्षम है। तेरे कर्मों का नरकादि गति में तुझे जो दुःख रूप फल प्राप्त होनेवाला है, उस समय तुझे होनेवाली छटपटाहट की कल्पना करने के कारण मेरी आँखों में ये आँसू आये हैं। तेरे भावी दुःख को मैं सहन नहीं कर सकता। जा तू सुखी रह।"

यह है भगवान महावीर की दिक्काल व्यापिनी करुणा। बुद्ध और महावीर की करुणा में अन्तर है। महात्मा बुद्ध घायल हंस को देखकर करुणार्द्र हो गये थे, पर श्रमण महावीर घोर उपसर्ग कर्ता के प्रति भी समभाव युक्त रहते हुए उसके भावी दुःख की कल्पना से करुणार्द्र हो रो पड़े थे।

क्या अपने मन में इतनी व्यापक करुणा का संचार हुआ है? क्या अपने को कष्ट पहुँचानेवाले के लिए कभी मंगल कामना की है? क्या स्वयं कष्ट में रह कर अन्य प्राणियों से स्नेह एवं सहानुभूति का संबंध बनाये रखने की कोशिश कभी की है? क्या पारिवारिक संबंध को कर्मोदय जनित संबंध मानकर कभी सच्चा धर्मबोध प्राप्त करने की इच्छा की है? क्या कभी पर-निंदा स्वयं के कर्णयुगल को गर्मशूल-सी लगी है? क्या कभी परायी औरत स्वयं की माता या बहन-सी दिखाई दी है? क्या कभी परधन पत्थर-सा नज़र आया है? यदि ऐसा नहीं हुआ

है, तो हे भोले जीव! तू अभी धोखे में है। अब भी समय है, चेत जा, नहीं तो हाथ मलते रह जाना पड़ेगा। 'फिर पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।' जब तुझे सही तत्त्व का ज्ञान हो जायेगा, तब तुझे संसार अवश्य ही असार लगेगा।

'ज्ञाते तत्त्वं कः संसारः ?

जीवन में सत्कृत्य है और ज्ञान भी है, फिर भी यदि निष्क्रिय रहे, तो उपलब्धि के रूप में शून्य ही है। 'दौड़ में कछुआ पहले पहुँच गया और खरगोश पीछे रह गया' माना कि गन्तव्य एक है, पर वहाँ तक शीघ्र पहुँचने के लिए लगन, स्फूर्ति एवं त्वरा की आवश्यकता है। क्रम टूटना नहीं चाहिये। क्रम टूटा तो पीछे ही रहना है। कछुए की चाल है कैसी? कहते हैं - 'नौ दिन चले ढाई कोस।' फिर भी वह खरगोश से पहले गन्तव्य तक पहुँच गया, इसलिए कि उसने अपना चलने का क्रम अटूट रखा और खरगोश ने अपना क्रम खंडित कर दिया, इसलिए वह पीछे रहा।

ज्ञानी पड़ा रहे तो निष्क्रिय है, शीलवान शीलपालन में विकल्प करे,तो वह ज़हाँ का तहाँ ही है। शीघ्रगामी क्रमशः गन्तव्य तक पहुँच ही जायेगा और केवल विचार करनेवाला कल के भरोसे बैठा मध्य में ही काल का ग्रास बन जायेगा। अतः सत्क्रिया की पगडंडी पर सतत चलते रहकर गन्तव्य को प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि काल हिंस्र श्वापद की तरह अपनी टोह ले रहा है।

आज हम सबके सामने वीतराग प्रणीत प्रशस्त मार्ग है। उनके द्वारा प्ररूपित दान, शील, तप और भाव के अनेक उदाहरण आत्मज्ञान के संजीवनी उपचार है। इन चारों में से किसी एक का सेवन भी असाध्य भवरोग का रामबाण इलाज बन सकता है। आवश्यकता है सदाचार के पथ्य पालन और श्रद्धापूर्वक इसके सेवन की। कहा भी है—

पथ्य रसायण बन्ने सेवे,माया मां ललचाय नहीं।
तो हरिदासतणा स्वामीने, मळता वार जराय नहीं।।

एक बार श्रद्धापूर्वक इस रसायन का सेवन करके तो देखो; फिर जब तक हिमालय है, गगन में जब तक चाँद है और सूरज अपनी सुनहरी किरणें पृथ्वी

पर बिखेर रहा है तथा जब तक गंगा में निर्मल जल है, तब तक के लिए तुम्हारी यश-सरिता पृथ्वी पर बहती रहेगी, संसार तुम्हारा यशगान गाता रहेगा। इसमें कोई शक नहीं है।

देखते नहीं, इतिहास के पृष्ठों पर वस्तुपाल, तेजपाल, संप्रति, कुमारपाल, खारवेल, जगडूशाह, खेमा देदराणी, चंपाश्राविका आदि के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। वे अपने आदर्श से युग-युग के लिए प्रेरणा के स्रोत बन गये।

सुभद्रा, कलावती शीलवती, चन्दनबाला, सुदर्शन सेठ और विजय-विजया के निर्मल शील की सौरभ आज भी संसार पवन को सुगंधित कर रही है। शील की खुशबू कभी कम नहीं होती। वह हमेशा बढ़ती रहती है। उनकी अमर गाथा आज भी अनेकों सज्जनों का मार्ग दर्शन कर रही है। उनका जीवनगान दुराचार के सागर में भटक रहे लोगों के लिए दीपस्तंभ-सा प्रकाशदाता है। वह उन्हें ज्ञान-प्रकाश प्रदान कर रहा है।

यह अमर शील ज्योति है। क्या इसे किसी तेल की या बत्ती की जरूरत है? नहीं! इस ज्योति का सीधा संबंध शीलसागर तीर्थंकर परमात्मा से है। परमात्मा इसका प्रधान ऊर्जागृह है। वहाँ के कलपुर्जे कभी खराब होते ही नहीं है और इस शील बल्ब का स्नेह फ्यूज कभी उड़ता ही नहीं है। यह ज्योति अटूट, शाश्वत, स्नेहिल और शीतल है। यही मोक्ष ज्योति है।

सिद्धि के लिए तप आवश्यक है। तप एक प्रकार का ताप है। प्रकृति भी भयंकर ताप के पश्चात् वर्षा की शीतलता प्रदान करती है। श्रमण भगवान महावीर ने अपना अधिकतम जीवन साधना की आग में तपाया, तब कहीं उन्हें तीर्थंकर पद प्राप्त हुआ। साधना का मूल तप है। तप एक यज्ञ है। इसमें इन्द्रिय विषयों की समिधाएँ जलायी जाती हैं और विषय-भोगों की बलि दी जाती है। कर्म कल्मष पूरी तरह जल जाने के पश्चात् ही शुद्ध आत्मज्योति प्रकट होती है। शास्त्रीय दृष्टि से जब तक कर्मों का आस्रव बंध जारी है, तब तक वासना का धुआँ जीवनाकाश में अपनी कालिमा पोतता ही रहेगा, क्योंकि इन्द्रिय विषय रूपी समिधा वासना से गीली है, वह जल नहीं रही है, केवल धुआँ छोड़ रही है।

आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि मनुष्य योग साधना के बल पर क्षुत्पिपासा पर विजय प्राप्त कर सकता है और अपना जीवन जी सकता है। आत्म चेतना

की योग साधना भूख-प्यास को कण्ठ में ही मिटा सकती है। योगवासिष्ठ में लिखा है — 'कण्ठे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।' योग साधना से आयु वृद्धि भी हो सकती है। उपवास जीवन की ऊर्जा को वृद्धिंगत करता है और आत्मा को निर्मल करता है, क्योंकि उपवास का अर्थ ही है शुद्ध आत्मा के निकट वास करना। अतः तपस्या में इन्द्रियों को लगा कर उनके विषयों का इस प्रकार क्षय करना चाहिये कि मन अपनी बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुखी हो जाये और आत्म-चिन्तन में सहायक बन जाये। तप की साधना से विभिन्न प्रदूषित पदार्थों का सेवन अपने आप बन्द हो जाता है।

तप मुख्य रूप से दो प्रकार का है — बाह्यतप और आभ्यन्तर तप। उपवासादि तप करना बाह्यतप है और प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग आभ्यन्तर तप है। बाह्य तप आभ्यन्तर तप पूर्वक करना चाहिये। इसीमें उसकी सार्थकता है। आभ्यन्तर तप रहित बाह्यतप केवल शरीर को दी गयी एक प्रकार की यातना ही है।

अष्टक प्रकरण में लिखा है—

ज्ञानमेव बुधा प्राहुः कर्मणां तापनात् तपः
तदाभ्यन्तर में वेण्ठं बाह्यं तदुपबृंहकम्॥

मुख्य रूप से कर्मों को जलाने वाला ज्ञानरूपी तप ही सच्चा तप है। बाह्य तप आभ्यन्तर तप की पुष्टि करता है तथा उसका पूरक होता है।

जैन दर्शन मोक्ष प्राप्ति के लिए तप को आवश्यक मानता है, पर श्रमण संस्कृति में से ही निकला हुआ बौद्ध धर्म या दर्शन तप को केवल देह दंड मानते हुए उसे निर्वाण प्राप्ति के लिए आवश्यक नहीं मानता।

बौद्ध दर्शन कहता है—

दुःखात्मनं तपः केचिन्मन्यन्ते तन्न युक्तिमत्।
कर्मोदय स्वरूपत्वात् बलीवर्दादि दुःखवत्॥

यथा बैल दुःख भोगता है, तपता है और कर्म बन्धन करता है, वैसे ही तप दुःख का स्वरूप है और मोक्ष का कारण नहीं है। तप आगम तथा युक्ति से अयुक्त है तथा अशुभ ध्यान वाला है, अतः आत्मा का अनर्थ करने वाला तप बुद्धिमानों को छोड़ देना चाहिये।

जैन दर्शन तप को दु:खरूप कतई नहीं मानता। उसका कहना है—

विशिष्ट ज्ञान संवेग: शमसारमतस्तप: ।
क्षायोपशमिकं ज्ञेयमव्याबाध सुखात्मकम् ।।

तप विशेष प्रकार के ज्ञान संवेग और शम से युक्त होता है और क्षायोपशमिक तथा अव्याबाध सुखस्वरूप होता है।

जैन सिद्धान्त तप को सुख का सार समझता है। जैसे धनार्थी सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि सहन करता हुआ भी धन के उपार्जन में सुख मानता है, वैसे ही संसार से विरक्त तत्त्वज्ञानी भी सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि सहन करने में और तत्त्वचिन्तन में सुख मानता है, परमानन्द मानता है, क्योंकि उसकी आँखों के सामने मोक्ष का अमृत सुख दृश्यमान है।

धनार्थिनां यथा नास्ति शीत तापादि दु:सहम् ।
तथा भव विरक्तानां तत्त्वज्ञानार्थिनामपि ।।

तप से ब्रह्मचर्य निर्मल बनता है, कषायों का नाश होता है और अनुबन्धसहित वीतराग की आज्ञा का पालन होता है।

वही तप श्रेष्ठ है, जिससे अशुभ ध्यान न हो और संयम व्यापार में बाधा उत्पन्न न हो तथा मन की इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति न हो।

तदेब हि तप: कार्य: दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत् ।
येन योगा न हीयन्ते क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ।।

गीता में भी यही तो कहा है कि यह मन तप के द्वारा ही वश में किया जा सकता है। मन समस्त दुविधाओं का मूल कारण है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:

स्वयं को शुभविचारों की ओर प्रेरित करने के लिए मनरूपी अश्व का नियमन तप रज्जु से ही करना चाहिये और उसे साधना मार्ग पर गतिमान करना चाहिये।तपस्या की सिद्धि के लिए आत्म प्रेरणा के साथ साथ सत्संगति भी आवश्यक है।

सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम् ?

सत्संगति मनुष्य के लिए क्या नहीं कर सकती? सब कुछ कर सकती है। आत्मकल्याण के लिए सत्संगति अत्यन्त आवश्यक है। जब लोहे जैसी धातु भी

पारस के सत्स्पर्श से स्वर्ण में परिवर्तित हो जाती है, तब बुद्धिमान मनुष्य का तो कहना ही क्या ?

सत्संग का सर्वोत्कृष्ट परिणाम प्रकट करनेवाली निम्न कथा आज भी सत्संग के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखी हुई है।

कोई एक मुनिराज विहार करते-करते वत्स देशान्तर्गत कौशांबी नगरी में पहुँच गये। धर्मलाभ का कारण जानकर वे वहाँ चातुर्मास के लिए ठहर गये। श्रेष्ठी अर्हद्दास का पुत्र विजय उनके प्रवचनामृत का श्रद्धापूर्वक नित्य रसपान किया करता था। मुनिराज की वाणी में जादू था। धीरे-धीरे विजय की मनोवृत्ति में परिवर्तन होने लगा। उसे स्वाध्याय तथा तत्त्व चिन्तन में रस लग गया। मुनिराज से तत्त्व चर्चा करते-करते वह क्रिया रुचि संपन्न हो गया। सर्व विरति चारित्र के रसायण ने अविरत जीवन रूपी लोहे को सुवर्ण में बदल दिया। विजय का जीवन सत्संगति के कारण धर्ममय बन गया।

धीरे-धीरे वर्षावास समाप्त हुआ और मुनिराज अन्यत्र विहार के लिए तैयार हो गये। साधु के लिए भला स्थान का क्या मोह ? भोले विजय के लिए मुनि विरह असह्य हो गया। वह मुनिराज को रोकने लगा, वह बोला - "महाराज ! स्नेह लगा कर आप ऐसे कैसे चल दिये ? यहीं रुक जाईये आप।"

मुनिराज मुस्कराकर बोले - "वत्स ! यह मोह ही तो बंधन है और हम इसी मोह बंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं। हमारा स्थाईवास कहीं नहीं होता। न स्थाई कोई घर और न स्थाई कोई परिजन। यही संसार का भी क्रम है। हर सुख संयोग के पीछे वियोग दुःख छिपा हुआ है; अतः इस सांसारिक सुख का त्याग करना ही समझदार के लिए उचित है।

जीवन में व्रतधारण कर संसार से विरत होने में ही सच्चा सुख है, अतः यदि सुख की कामना करते हो तो विरति में रहना सीखो। व्रती जीवन में ही सच्चा सुख है

यह शरीर तो क्षणभंगुर है। सार्थक जीवन वही है जिसमें चतुर्थ अणुव्रत स्वदारा संतोष या परस्त्रीगमन विरमण व्रत का कठोरतापूर्वक पालन किया जाये। इस व्रत के पालन से पाँचों अणुव्रतों के पालन का फल प्राप्त हो जाता है। साथ ही स्वदारा को भी कृष्ण पक्ष में छोड़ कर मन-वचन-काया से अखण्ड ब्रह्मचर्य का

पालन किया जाये, तो वह और अधिक फलदायक है। शास्त्रकार ज्ञानी गुरु भगवन्तों ने शील व्रत पालन का अपार महत्त्व बताते हुए कहा है कि मात्र शील पालन से भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। जैसे कि—

सीलं उत्तमं वित्तं, सीलं जीवाण मंगलं परमं।
सीलं दोहग्गहरं, सीलं सुखाण कुल भवणं।।

शील उत्तम धन है, जीवमात्र के लिए परम मंगल है, दुर्भाग्य दूर करके सौभाग्य प्रदान करानेवाला है और सुख की खान है।

शास्त्रकार कहते है—

बिभेषि यदि संसारान्मोक्ष प्राप्तिं च कांक्षसि।
तदेन्द्रियजयं कर्तुं स्फोरय स्फार पौरुषम्।।

यदि तुम्हें संसार से भय लगता है और तुम मोक्ष प्राप्ति की कामना करते हो, तो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने पौरुष का उपयोग करो। इन्द्रिय जय करने का अर्थ मात्र इन्द्रियों को स्वकर्म से रोकना ही नहीं है, अपितु शुभाशुभ विषय़ों में रागद्वेष की निवृत्तिपूर्वक इन्द्रियों को स्वकर्म से रोकना चाहिये।

बुद्धिमान पुरुष के लिए विषयों के व्यालपाश से मुक्त होकर आत्मानंदी होना ही श्रेय मार्ग है।

आत्मानं विषयैः पाशैः भववास पराङ्मुखम्।
इन्द्रियाणि निबन्धन्ति मोहराजस्य किङ्कराः।।

ये इन्द्रियाँ मोहराज की सेविकाएँ हैं। ये संसार विमुखों को भी पुनः बन्धन में डालने की ताक में रहती है। जिसने शीलव्रत धारण कर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, उसके लिए सागर गागर बन जाता है। पुराणों में एक कथा है कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पी लिया था। आशय इतना ही है कि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के कारण संसार सागर उनके लिए अंजुली जितना संकीर्ण बन गया था। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले के लिए आग शीतल जल बन जाती है, शूली सिंहासन बन जाती है, साँप पुष्पमाला बन जाता है, शेर हिरन-सा निरीह बन जाता है, मेरूपर्वत सरसों के दाने-सा बन जाता है और हलाहल अमृत बन जाता है। कहा भी है—

वहिन्: तस्य जलयते जलनिधिः कुम्भायते तत्क्षणात्।

मेरू: स्वल्प शिलायते मृगपतिः सद्य कुरङ्गयते।।
व्यालो माल्य गणायते विषरसः पीयूष वर्षायते।
यस्याङ्कऽखिल लोकवल्लभमतं शीलं समुन्मीलति।।

अठारह हजार शीलांगरथ को रत्नत्रयसंपन्न महात्मा विरति, तप, ध्यान तथा भावना की पवित्रता से अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं।

सम्यग्दृष्टिर्ज्ञानी विरति तपोध्यान भावनायोगैः।
शीलाङ्क सहस्राष्टा दशकमयत्नेन साधयति।।
शीलार्णवस्य पारं गत्वा संविज्ञ सुगममार्गस्थ।
धर्म ध्यानमुपगतो वैराग्योप्राप्नुयाद्योगम्।।

वैराग्य योग तभी प्राप्त होता है, जब शील समुद्र को पार कर संविज्ञ सुगम मार्ग पर गमन किया जाये और धर्मध्यान में तन्मयता प्राप्त की जाये।

मूलं चैतदधर्मस्य भवभाव प्रवर्धनम्।
तस्माद्विषान्न वत्त्याज्य-मिदं मृत्युमनिच्छता।।

शील को खंडित कर विषयों में रममाण होना अधर्म का मूल है अतः मृत्यु की अनिच्छा करनेवाले मुमुक्षु को विषमिश्रित अन्न भक्षण के समान विषय सेवन का त्याग करना चाहिये। यही परमात्मा का अमर सन्देश है।

मुनिराज की अमृतोपम वाणी विजय एकाग्रतापूर्वक सुनता रहा। उसे अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति हो रही थी। वह सोच रहा था कि इस ज्ञानामृत का मैं सतत पान करता रहूँ। वह अपनी प्रसन्नता छिपा न सका। उसने सन्तोष पूर्वक मुनिराज की वाणी का सत्कार किया और कृष्ण पक्ष में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का नियम ले लिया।

साधु-सन्त कहाँ एक ही स्थान पर रहते हैं?

बहता पानी निर्मला, बन्धा गन्दा होय।
साधु तो फिरता भला, दाग न लागे कोय।।

विजय के जीवन को शीलव्रत से अलंकृत कर मुनिराज अन्यत्र विहार कर गये। विजय का जीवन कृतार्थ हो गया।

सच्चे मुनि ऐसे ही होते हैं। धर्म की प्रभावना करते हुए वे स्वयं के साथ अन्य जीवों का भी कल्याण करते हैं।

धर्म के दस लक्षण हैं। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य। इनका पालन करता हुआ संसारी जीव मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होता है। इन दस लक्षणयुक्त जीव ही धर्म का पूर्ण अधिकारी होता है। जैसा कहा है-कि

सेव्य: क्षान्ति मादर्व-मार्जव शौचे च संयम त्यागो।
सत्य तपो ब्रह्मकिञ्चन्यानी त्येष धर्मविधि: ।।
धर्मस्य दया मूलं न चाक्षमावान्दययां समादत्ते।
तस्माद्य: क्षान्तिपर: साधयत्युत्तमं धर्मम् ।।

धर्म का मूल दया भाव है। क्षमारहित मनुष्य दयावान नहीं हो सकता; इसलिए जो क्षमावान है; वही उत्तम धर्म साधन कर सकता है।

विनयायत्ताश्च गुणा: सर्वे विनयश्च मार्दवायत्त: ।
यास्मिन्मार्दवमखिलं सर्वगुण माप्तत्व माप्नोति।

दया के पश्चात् विनय आने में देर नहीं लगती। समस्त गुण विनय के अनुगामी होते हैं और विनय मार्दवता का अनुगामी है इसलिए मार्दवता समस्त गुणों को आप्तत्व प्रदान करती है। अत: विनयी बनना एक प्रकार से समस्त गुणों का उपार्जन करना है। नम्रता बहुत बड़ी उपलब्धि है।

नाऽऽर्जवो विशुद्धयति न धर्ममाराधयत्यशुद्धात्मा।
धर्माद्रहितो न मोक्षो मोक्षात्परमं सुखं नान्यत् ।।

विनयी बनने का सत् प्रयत्न करना अन्य गुणों का स्वत: उपार्जन है। विनम्रता आत्मा को जो श्रेष्ठ स्थिति प्रदान करती है, वह है सरलता अर्थात् माया से रहितता; क्योंकि माया का त्याग किये बिना चित्त विशुध्द नहीं होता और बिना चित्त शुद्धि के धर्माराधन नहीं हो सकता। यदि धर्माराधन नहीं हुआ तो फिर मोक्ष कहाँ ? अत: आर्जवता अत्यन्त आवश्यक है।

विजय इसे अपने जीवन के सत्कर्मों का ही फल मान रहा था, जो ऐसे सत्संग का लाभ मिला। इतने श्रेष्ठ गुरु का योग उसे पूर्वजन्म के किसी ऋणानुबन्ध से ही हुआ होगा। विजय यह मान रहा था कि अपना गुरुदेव के साथ जन्म जन्मान्तर का संबंध है।

संतौ सद्भि: योग: कथमपि पुण्येन भवति।

पुण्य बिना सत्संग प्राप्त नहीं होता और सद्गुरु का योग भी प्राप्त नहीं होता। अत: अवश्य ही यह अपने भाग्योदय का शुभ मुहूर्त है। धन्य है ऐसे गुरुजन, जिनमें गुणों का प्रकाश जगमगा रहा है।

यस्तु यतिर्घटमान: सम्यक्त्व ज्ञान शील सम्पन्न: ।
वीर्य मनिगूहमान: शक्त्यनुरुप प्रयत्नेन ।।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रुप रत्नत्रय से विभूषित होकर ऐसे गुरुजन स्वयं तो मोक्षगामी होते ही हैं; किन्तु अपनी संगति में आनेवाले अन्य जीवों को भी मोक्षोन्मुख बना जाते हैं।

अपने गुरु के गुणों का चिन्तन करते-करते विजय स्वयं चिन्तनशील स्वभाव का बन गया। वह कभी गृहस्थ जीवन के सुख-दु:ख के बारे में सोचता, कभी संसारी जीवों के मोह लोभ के परिणामों का अवलोकन करता, कभी दु:ख पीड़ित जीवों की स्थिति पर विचार करता और फिर सोचा करता, सोचा ही करता। अन्ततोगत्वा उसकी मनोभूमि में त्याग बीज अंकुरित होने लगे, फलित होने लगे।

विजय की उदासीन और एकान्त प्रिय वृत्ति उसके माता-पिता से छिपी नहीं रह सकी। उन्होंने उसका विवाह शीघ्र करने का निश्चय कर लिया। आखिर उनके बुढ़ापे का सहारा तो वही था। और फ़िर पोते पोतियों का मुख देखकर घर में उनकी बाल क्रीड़ाओं का स्वप्न भी वे देख रहे थे। सच है - मोहग्रस्त जीव न जाने क्या-क्या स्वप्न देखा करता है। उसे अपने परिवार के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। मोही जीव और जहाज पर रहा हुआ पक्षी दोनों की स्थिति एक-सी रहती है। जहाज पर रहा हुआ पक्षी समुद्र में इधर-उधर उड़-उड़ कर अन्त में पुन: जहाज पर आकर बैठ जाता है, उसी प्रकार मोही व्यक्ति यदि कहीं सत्संग में चला भी गया, तो भी अन्त में वह अपने परिवार का ही सहारा लेता है। वह रह-रह कर घर-परिवार के इर्द-गिर्द भटकता रहता है। अत: विजय के माता-पिता भी बहू, पोते आदि के सुख के दिवा स्वप्नों में विचरण करते हुए मन ही मन अपने मंसूबे पूरे करने की सोच रहे थे।

इधर विजय की स्थिति कुछ अलग ही थी। उसकी युवावस्था में भी उसकी प्रौढ़ता नज़र आती थी। वह धीर, गंभीर और विरक्त-सा बन गया था। उसकी

इस स्थिति से उसके माता-पिता बहुत चिन्तित थे।
मुनिराज अपना वर्षावास पूरा कर कौशांबी से विहार कर गये। उसके कुछ समय पश्चात् पुन: एक बार कौशांबी नगरी में किन्हीं साध्वीजी महाराज का अपनी शिष्याओं के साथ आगमन हुआ। कौशांबी में पुन: एक बार धर्म ध्यान की लहर चल पड़ी। धनावह सेठ की मेधाविनी सुपुत्री विजया पर धर्मध्यान का प्रभाव छा गया। विजया अनिद्य सुन्दरी तो थी ही, पर साथ ही बुद्धिमान और अनेक कलाओं की जानकार भी थी। वह विवाह के योग्य हो गयी थी, अत: उसके माता-पिता उसके लिए किसी राजकुमार से दूल्हे को खोज रहे थे। पर व्यक्ति सोचता कुछ और है और होता कुछ और है। हम सोचते क्या है और होता क्या है? 'मेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और।'
कौशांबी में गुरुणीजी महाराज का आगमन क्या हुआ, जैसे विजया के लिए जीवन परिवर्तक महामंत्र सफल हो गया। विजया उनके पास नित्य जाने लगी धार्मिक अध्ययन के लिए। वह उनके त्यागी जीवन से प्रभावित होती गयी और दिन-दिन शील, चारित्र और धर्मबोध में डूबती गयी। वह वैराग्य रंग में दिन-दिन रंगती गयी। देखते-देखते गुरुणीजी का वर्षावास पूरा हो गया।
उन्हें कहाँ वहाँ घर बना कर रहना था? वे तो न यहाँ, न वहाँ। उनका कोई स्थायी निवास तो था नहीं। उन्होंने अपने विहार की तैयारी की।
जब विजया को यह ज्ञात हुआ कि साध्वीजी महाराज अब विहार करने की तैयारी में हैं, तो उसका भोला मन उनके भावी विरह की कल्पना से तड़प उठा। उसे लगा कि मैं भी उनके समान ही सर्व विरति चारित्र ग्रहण कर लूँ और उनके साथ विहार करती रहूँ। अच्छा हुआ, संसार के दलदल में फँसने के पूर्व मुझे सावधान करने के लिए गुरुणीजी महाराज का आगमन हुआ। क्या सुख है संसार में? कभी मोह, कभी वियोग, कभी अभाव और कभी संताप। सचमुच यह संसार दु:खमय ही है,संयोग वियोगमय है और भोग रोगमय है। देखो तो, मेरा पड़ोसी पुत्र विरह से दु:खी है, तो वे चाचा पुत्रों के दुष्ट व्यवहार से दु:खी है। मेरी मामी बहू के दुर्व्यवहार से दु:खी है, तो मेरी वह बहन अभावग्रस्त जीवन से दु:खी है। इस संसार में कहीं भी सुख की छाया तक दिखाई नहीं देती। किसी भी संसारी का हृदय टटोलने पर वहाँ दु:ख की आर्तध्वनि ही सुनाई देती है। क्यों

न इस भवार्णव में डूबने से पूर्व सत्संग की नाव पर चढ़कर मैं स्वयं को मोक्ष की ओर ले जाऊँ? और उसने मन ही मन विवाह न कर शील व्रत पालन करने का संकल्प कर लिया।

गुरुणीजी ने अपना सामान पोटले में बाँधा और पोटला उठाकर वे उपाश्रय से बाहर निकली ही थी कि उन्हें अपने सामने रास्ता रोके विजया दिखाई दी। उसकी आँखो में आँसू थे और उसका गला रुंध गया था। वह बोलना चाहती थी, पर बोल नहीं पा रही थी। अन्त में सिर झुकाकर हाथ जोड़कर उसने कहा— "आप यहीं रहिये। क्या आप मुझे विरह की आग में तड़पाना चाहती हैं? मैं आपके बिना नहीं रह सकूँगी।"

विजया की आग्रह भरी वाणी सुनकर गुरुणीजी भी गद्‌गद्‌ हो गयीं। विजया के स्नेह को देखकर एक बार क्षणभर के लिए वे भी भाव विह्वल हो गयी। फिर तुरन्त उन्होंने स्वयं को सम्हाल लिया। विजया के सर पर स्नेहिल हाथ रखकर वे बोल पड़ीं—

विजया! तू नहीं जानती कि हम साधु हैं? न तो हम किसी एक जीव के बँधे हैं और न किसी एक घर के। इसी प्रकार न हम लोग किसी एक गाँव से ही बँधी हैं हमारे लिए तो यह सारा संसार ही घर है। संसार के समस्त जीव हमारी दया के आकांक्षी हैं। संसार के भँवर में चक्कर लगाते जीवों को सहारा देकर उन्हें मोक्ष मार्ग की ओर लगाना हमारा काम है। संसार का प्रत्येक जीव हमें प्रिय है। सर्वज्ञ वीतराग प्रभु की आज्ञा हमारा पार पत्र (पासपोर्ट) है।

संयोग से तुम मेरी संगति में आ गयी। संस्कार, पूर्व पुण्योदय आराधना, निष्ठा, श्रद्धा आदि ने तुम्हारे लिए मार्ग निर्माण कर दिया अब तुम शीलव्रत की आराधना करके अपने जीवन को सफल बनाओ। हमारा तुम्हें हार्दिक आशीर्वाद है। हम तुम्हे पुन: मिले या न भी मिले, यह कोई निश्चित नहीं है। सब संयोग की बात है। जाओ, मन छोटा मत करो, प्रसन्न रहो और चार महीने की जमा पूँजी से आराधना का सफल व्यापार करो।

यदि हो सके तो परमात्मा के मार्ग का अनुसरण - अनुगमन करने के लिए दृढता पूर्वक शीलव्रत को धारण करो।साधना का मार्ग अपनाओ, संसार के मोहजाल को तोड़ने का सतत् प्रयत्न करो, जीवन को तप से तपाओ, धर्म से सुवासित करो

और शील से सजाओ और चतुर्थ अणुव्रत का अक्षय पालन कर चरम उत्कर्ष को प्राप्त करो। जब तक शील नहीं आयेगा, आगे की गाड़ी नहीं मिलेगी। शास्त्रकारों ने कहा है—

सीलं धम्मनिहाणं, सीलं पावाणं खंडियं भणियं।
सीलं जन्तूण जगति, आकित्तिमं मंडणं नेयं।।
नरयदुवार निरुंधण कमाड।
सुरलोग धवल मंदिरे आर हणे पवर निस्सेणी।।

शील धर्म निधान है। 'शीलं परमभूषणम्'- सबसे श्रेष्ठ आभूषण शील ही है। शील एक ऐसा गहना है जो मनुष्य के लोकोत्तर जीवन का श्रृंगार करता है और उसका मूल्य चुका कर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

शील को पापभंजक बताया गया है। संसार में प्राणियों का अकृत्रिम आभूषण शील ही है।

शील नरक गति के द्वार बन्द करने की अर्गला है। इसके रहते जीव नरक गति में कभी नहीं जाता। शील देवलोक के धवल मंदिर में आरोहण करने के लिए श्रेष्ठ सीढ़ी है -मणिमय सोपान परंपरा है।

शील की जितनी प्रशंसा की जाये, उतनी कम है। विजया ! शीलव्रत को धारण कर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाओ, यही तुम्हें मेरा धर्मबोध है।

हम अपने आचार के अनुसार कहीं स्थायी निवास नहीं कर सकती , अतः हम यहाँ और अधिक रहने में असमर्थ है, मुझे विहार करना ही पड़ेगा। तुम धर्म ध्यान में रहना और मेरी बातों को ध्यान में रखना।

मेरी मानो तो तुम शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य पालन का जीवन भर के लिए नियम ले लो और पच्चक्खाण ग्रहण करो। यही मेरे प्रति तुम्हारा सच्चा प्रेम होगा, सच्ची श्रद्धा होगी। परमात्मा तुम्हें शीलपालन की शक्ति प्रदान करें।"

और विजया ने दृढ संकल्प पूर्वक शुक्ल पक्ष में आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का नियम ले लिया। गुरुणीजी ने व्रतोच्चारण करवाया, पच्चक्खाण दिया और वे अन्यत्र विहार कर गयीं।

विजय के पिता सेठ अर्हद्दास सुशील कन्या की खोज में थे। एक बार जब वे मन्दिर से घर लौट रहे थे; तब अचानक उन्हें विजया दिखाई दी । पूजा के वेष

में वह एक सती साध्वी-सी लग रही थी। वह प्रभु पूजन के लिए मंदिर जा रही थी। सेठ अर्हद्दास उसे देखकर कुछ विचार मग्न हो गये। उन्हें लगा कि यह कन्या विजय के जीवन में अवश्य ही बहार ला देगी।

अब सेठ अर्हद्दास आगे की कार्यवाही में लगे। उन्होंने सेठ धनावह से विजय के लिए विजया की माँग की। धनावह सेठ को यह रिश्ता मंजुर हो गया। शुभदिन शुभमुहूर्त में विजय-विजया का विवाह धूमधाम से संपन्न हुआ। उनके माता-पिता को कहाँ मालूम था कि गृहस्थ जीवन में जुड़े जीव संयम मार्ग के पथिक है। उनका काम अकाम है, उनका श्रृंगार वास्तव में सादगी है, और उनका स्नेह वैराग्य है; यह कोई नहीं जानता था।

नवेली दुल्हन विजया सोलह श्रृंगारों का बोझ स्वयं पर लाद कर पिया मिलन के लिए चली। आसमान में टिमटिमाते तारे आँखें फाड़-फाड़ कर उस दृश्य को निहारने लगे।

सजे सजाये चित्रमन्दिर में विजया ने गजगति से प्रवेश किया। वहाँ पलंग पर पियु अपनी प्रिया का इन्तजार कर रहा था।विजय ने पलक पाँवड़े बिछा कर विजया का स्वागत किया।

ज्योंही विजया पास आई, विजय उसे झरोखे के पास ले गया। दोनों आसमान के तारे निहारने लगे। कृष्णपक्ष की बारहवीं रात्रि थी। आसमान में चाँद कहीं नजर नहीं आ रहा था।

विजय बोला—देखो विजया! अभी तक आसमान में चाँद नजर नहीं आ रहा है। कुछ समय बाद उसका उदय होगा; उस समय तुम देखना, वह कितना क्षीण काय है।प्रात:काल के समय तो वह बिलकुल फीका नजर आयेगा। रात्रि का अवसान चाँद की मृत्यु का द्योतक है।

चाँद रात में चमकता है; दिन में फीका पड़ जाता है; तो कमलिनी दिन में खिलती है और रात में मुरझा जाती है। मनुष्य के जीवन को देखो। वह भी इसी प्रकार का है। संयोग एक दिन वियोग में बदल जाता है। बचपन सदा नहीं रहता। जवानी बचपन को हजम कर जाती है और बुढापा जवानी को। आज की जवानी कल का बुढ़ापा है। शुक्लेन्दु दिन-दिन वृध्दिंगत होता है।पूनम के दिन सोलह कलाओं से शोभायमान होता है; पर कृष्णपक्ष में वही पूनमचंद अपना क्षयी नाम

सार्थक करता है। अमावस्या की रात उसका कोई अस्तित्व ही दिखाई नहीं देता। यह जीवन भी एक दिन काल का ग्रास बनकर इसी प्रकार अस्तित्वहीन हो जाता है। जीवन में जितने भोग हैं, उतने ही रोग हैं।

ऐसा होते हुए भी हम अपने जीवन को चिरस्थायी बना सकते हैं। क्यों न हमारा मिलन भी ऐसा हो जाये, जिसमें न तुम मर सको और न मैं भी। हम कुछ ऐसा करें, जिससे हमारा यह मिलन सदा के लिए स्थायी बन जाये । न तुम्हें बुढ़ापा देखना पड़े और न मुझे भी बुढ़ा होना पड़े। हम दोनों अपने सनातन रूप को प्राप्त कर लें। न तुम्हें संसार भोग के विषधर डसे और न मैं उनके पाश में बंधूँ। बोलो, क्या तुम ऐसा उपाय चाहती हो?

विजया अपने प्रियतम की सब बातें उस मिलन बेला में भी बड़े ध्यान से सुन रही थी। वह स्वयं समझदार थी। उसने देखा कि अपने प्रियतम की आँखों में वासना के स्थान पर शुध्द शील की जगमगाहट है। वह और भी सुनना चाहती थी, अत: अनभिज्ञता प्रकट करते हुए बोली-"नाथ! मैं आपकी ये रहस्यवाणी ठीक से समझ नहीं सकी हूँ। कृपया आप सब कुछ पुन: एक बार विस्तार से समझांइये।"

विजय की वाग्गंगा प्रवाहित हुई। वह बोला — तीर्थंकर परमात्मा जिस ज्ञान गंगा को प्रवाहित करते हैं, उसी ज्ञान जल का मैं तुम्हें आचमन करा रहा हूँ। तीर्थंकर और चक्रवर्ती भी जब अपने समस्त राजवैभव का त्याग कर संयम मार्ग ग्रहण कर लेते हैं; तब हम उस मार्ग से वंचित क्यों रहें? तीन काल में और तीन लोक में मुक्ति का मार्ग तो एक ही है और वह है सर्व संग परित्याग । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इनकी एकरूपता ही मोक्ष मार्ग है। हम भी क्यों न इस रत्नत्रयीयुक्त संयम मार्ग को अपना लें?

मैंने सद्गुरू योग की प्राप्ति के पश्चात् भोगविलास को तिलांजलि देकर उनसे चतुर्थ अणुव्रत ग्रहण किया है। इस व्रत के अन्तर्गत मैंने कृष्ण पक्ष में सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का व्रत ले रखा है। आज कृष्ण पक्ष की तेरहवीं रात है। आज हमारे मधुर मिलन का योग भी है। मैं तुम्हें कैसे सान्त्वना दूँ कि मैंने तुमसे विवाह कर तुम्हारे साथ अन्याय किया है। यदि तुम तीन दिन तक और प्रतिक्षा करो और मुझे क्षमा कर दो, मेरा मन काफी हलका हो जायेगा । तीन दिन के पश्चात् मैं पूरी तरह

तुम्हारे प्रति समर्पित हूँ।

मैं अपने कर्म कल्मष को धोना चाहता हूँ। तुम्बी पर रही हुई मिट्टी पानी का स्पर्श पाते ही दूर हो जाती है; उसी प्रकार आत्मा का कर्म मैल भी शीलपालन से और व्रतपालन से दूर हो जाता है। मैंने स्वंय की आत्मा को विशुध्द करने के लिए कर्म मैल को ब्रह्मचर्य व्रत रूपी जल से धोने का निश्चय कर रखा है। कृष्ण पक्ष में मैं कभी भी तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं बन संकूगा, कृपया मुझे क्षमा कर दो। आज त्रयोदशी है। अमावस्या को कितने दिन शेष है। सिर्फ तीन दिन ही तो शेष हैं; तब तक के लिए तुम धैर्य धारण कर लो । यह समय देखते ही देखते बीत जायेगा और मेरे व्रत की भी रक्षा हो जायेगी

विजय की बात पूरी हुई। उसके कारण आगन्तुक नवोढ़ा की मेहन्दी की लाली,उसका श्रृंगार, उसके मन की आशाएँ सब पर उदासी छा गयी।जैसे एक साथ सब कमलिनियाँ मुरझा गयी हों, मरालिणी हंस को खो बैठी हो या कुमुदिनी पूनम की जगह अमावस्या को पाकर म्लान हो गयी हो; वैसे ही विजया का प्रसन्न मुख मण्डल एक दम मुरझा कर रह गया।उसका चेहरा उतर गया। किसी अज्ञात कालिमा से उसका मुख श्यामल दिखाई देने लगा । मुस्कराहट की जगह चेहरे पर गंभीरता छा गयी। उसके हृदय की गति कुछ तेज हो गयी। न जाने क्या अप्रत्याशित घटना घटने वाली है; इस आशंका से उसका मन शंकित हो गया। उसका गला कुछ रूँध-सा गया।

किन्तु विजया इसलिए उदास नहीं थी कि प्रिय ने व्रत धारण किया हुआ है। उसे चिन्ता थी कि अब अपने व्रत का क्या होगा।शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य पालन का उसका व्रत जो था। वैसे स्व-पर के भेदज्ञान के कारण ज्ञानवान लोग तृष्णाओं के क्षय होने पर उदास नहीं होते; अपितु पूर्णानन्दी होते हुए वे अधिक विकासमान होते हैं। उनकी आत्मा में दीनता नहीं प्रसन्नता होती है। कहा भी है—

जागर्ति ज्ञानदृष्टिर्चेत् पूर्णानन्दस्य तत्किं स्याद्दैन्य वृश्चिक वेदना।

विजय की सब बातें विजया ने ध्यानपूर्वक सुनी। फिर उसनें कहा — "कृष्ण पक्ष में शील पालन का व्रत लेकर आपने अपने जीवन को धन्य बनाया है, उसी प्रकार मैं भी शुक्ल पक्ष में शीलपालन का व्रत पहले से ग्रहण कर चुकी हूँ। अत:

मैं आपकी पत्नी होते हुए भी शुक्ल पक्ष में मैं आपके काम की नहीं हूँ। आप मेरी मज़बूरी समझिये और मुझे क्षमा कीजिये। आप अन्य विवाह करके अपने जीवन को सुखमय बनाइये। और मुझे संयम मार्ग का पूर्ण रूप से वरण कर अपने जीवन को धन्य बनाने का अवसर प्रदान कीजिये। आपकी शुभकामना मेरा संबल होगी। नाथ! नाथ! कृपया मुझे क्षमा करें।"

किसी को मनचाहा मिलने पर जो प्रसन्नता होती है, वही प्रसन्नता विजय को विजया की बातें सुनकर हुई। विजय के मुखमंडल पर सन्तोष और प्रसन्नता की एक अलौकिक आभा छा गयी। वह बोला-"प्रिये! हम कितने भाग्यशाली हैं! एक मार्ग के पथिक संयोग से एक ही नाव में बैठ गये हैं। अब हमारी यह यात्रा अवश्य ही हमें विजय प्राप्त करायेगी। हाथ में आया चिन्तामणि रत्न अब न तो तुम्हें ही छोड़ देना है और न मुझे ही। हम दोनों ही अपने रत्न को सम्हाल कर रखेंगे। भोग सुख तो अनित्य है और आत्मसुख नित्य। ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो नित्य को छोड़ कर अनित्य की ओर हाथ फैलायेगा। कहा भी है—

भोगसुखैः किमन्यैः, भयबहुलैः काङ्क्षितैः परायत्तैः।
नित्यमभयमात्मस्थं, प्रशम सुखं तत्र यति तव्यं।। १ ।।
यावत्स्व विषय लिप्तो, रक्ष समूहस्य चेष्ट्यते तुष्ठौ।
तावत्तस्यैव जये वरतरमशठं कृतो यत्नः ।। २ ।।

भोग सुख अनित्य तो है ही, पर भय से भी भरे हुए हैं। ये आसक्तिपूर्वक भोगे जाते हैं, पराधीन है। ऐसे अनेक दोषों से परिपूर्ण भोग सुखों की क्या आवश्यकता है? आवश्यकता है प्रशम सुख की, जो अविनाशी, निर्भय तथा स्वाधीन भी है। ये इन्द्रियाँ इतनी विषय लंपट है कि इनकी माँग शराबी की शराब के समान कभी पूरी होती ही नहीं। अतः इनका दमन करना ही इन्हें जीतने का सही उपाय है। इस ओर तुम्हारा भी प्रयत्न है, और मेरा भी। अतः अब मैं पुनः विवाह क्यों करूँ। मुझे इससे लाभ तो कुछ भी नहीं है, पर हानि की संभावना ही अधिक है।

तुम्हारे समान चारित्रवान पत्नी की मुझे प्राप्ति हुई है। अब मैं पारस छोड़ पत्थर के पीछे क्यों लगूँ? दूसरा विवाह करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है।

ज्ञान के मानसरोवर में विहार करनेवाले मरालयुगल हम अब कहाँ किसी सरोवर

में विहार करें। हमारे लिए अब यह उचित नहीं है। कहा भी है—

मज्जत्यज्ञः किलाज्ञाने विष्ठायामिव शूकरः।
ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने मराल इव मानसे।।

भोगी जीव ही शूकर के समान विषयविष्ठा का उपभोग लेते हैं। ऐसे अज्ञ जीव सचमुच अज्ञान में ही आकंठ डुबे हुए रहते हैं; पर ज्ञानी ज्ञान सागर में गोते लगाता है; वैसे ही जैसे राजहंस मानसरोवर में। वह अन्त में मोक्ष सुख की शाश्वत लब्धि प्राप्त करता है। अतः अब तुम भोग का मोह ज़रा भी मत रखो। परमात्मा ने हम दोनों का मार्ग पहले से ही प्रशस्त कर रखा है। अतः अब हम दोनों अपने-अपने नियम में ही दृढ रहें; यही हमारे लिए उचित है। कहा भी है-

निरन्तरं विचारो यः, श्रुतार्थस्य गुरोर्मुखात्।
तन्निदिध्यासनं प्रोक्तं, तच्चैकाग्रेण लभ्यते।।

गुरूमुख से जो भी श्रुतार्थ प्राप्त हो; उसका निरन्तर चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। अतः अब हम दोनों गुरूप्रदत्त व्रत का निश्चलता से पालन करें तथा साथ-साथ ही संयम ग्रहण कर इस संसार समुद्र से पार हो जायें। पर अभी नहीं। इसके लिए अभी कुछ समय बाकी है।"

विजय के इन उदात्त विचारों से विजया बहुत प्रभावित हुई। वह बोली — "प्राणनाथ"! आप सचमुच मेरे परम उपकारी हैं। रथ वही गतिमान होता है; जिसके दोनों पहिये समान हों और अश्व भी एक समान हों। समान अश्व एक दूसरे की कमजोरी में स्वयं संबल बन जाते हैं। यदि एक निर्बल भी हो जाये; तो दूसरा उसे सहारा देकर सबल बना देता है।

आप कहते हैं कि संयम ग्रहण में अभी देर है; पर प्राणनाथ ! आग के पास घी का घड़ा कब तक सम्हाले फिरोगे? यह संसार बड़ा विचित्र है। इससे नित नूतन घटनाओं से जीव आकुल व्याकुल होता रहता है। यह मन का घोड़ा बड़ी मुश्किल से काबू में आता है।

पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, तप-मोक्ष; इन सब में मन ही प्रधान रूप से कारण रहता है। अतः इसे वश में करने के लिए लंबी प्रतीक्षा करना माल को चौराहे पर रखकर घोड़े बेचकर सोने जैसा है।

यह मन बहुरंगी है, बहुढ़ंगी है। बाह्याभ्यन्तर इच्छाओं के वशीभूत होकर यह मन

न जाने कब बिगड़ जाये और संसार में धकेल दे। अतः आत्म तत्व को सम्यक् जानकर संसार त्याग में शीघ्रता करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। क्योंकि 'श्रेयांसि बहुविध्नानि' कल्याण के मार्ग बाधाऐं अनेक आती है।अतः सर्व विरति चारित्र के लिए हमें शीघ्र उद्यमवान होना चाहिये। बाद में दीक्षा लेने का विचार छोड़ देना चाहिये। कल किसने देखा है? कल का क्या भरोसा?'आज' हमारे पास है। इसकी हत्या होने से पहले इसका उपयोग कर लो; क्योंकि आनेवाला कल इसकी हत्या करनेवाला है। वह इसका हत्यारा है। अतः ज्ञानगर्भित वैराग्य रखते हुए हमें शीघ्रातिशीघ्र संयम ग्रहण कर लेना चाहिये। कहा भी है —

एतत्तत्व परिज्ञानान्नियमेनोपजायते।
यतोऽतः साधनं सिध्देरेतदेवोदितं जिनैः ।।

यह वैराग्य ही सिध्दि का परम साधन है,ऐसा जिनेश्वर भगवन्तों का कथन है।"

भव्य जनो। जरा आत्मविश्लेषण तो कर देखो । जो प्रेमीयुगल सुखी विवाहित जीवन जीने के लिए निकला था; वह अपने अरमान और अपनी आकांक्षाओं का बलिदान कर संयम मार्ग का निर्णय कर बैठा।धन्य है, इसकी आत्मविजय। उनके इस निर्णय का पूर्व जन्म के कर्मोदय के साथ-साथ दृढ़ इच्छाशक्ति भी एक कारण है। जब मनुष्य श्रेष्ठ साध्य के लिए संकल्प कर बैठता है; तो सफलता उसके चरण चूमने लगती है। उसके मार्ग की बाधाएँ अपने आप दूर हो जाती है और विरोधी उसके सहयोगी हो जाते है। यदि संकल्प दृढ़ हो, तो सफलता प्राप्त होती ही है।

इस प्रेमी युगल ने किसी को अपने व्रत नियम की खबर तक नहीं पड़ने दी। संसार में रह कर भी वह त्यागी बना रहा। धन्य है इसे।

नहीं तो संसार में सड़ते हुए, भोग रोग से आक्रान्त होते हुए तथा नानाविध पीड़ाओं से ग्रस्त होते हुए भी लोग योग तथा शीलपालन के लिए तैयार नहीं होते। बड़ा कठिन काम है यह।लोहे के चने चबाना या असिधार पर चलना सहज है; पर शील धारण कर उसका निर्वाह करना कठिन है। संसार रसिक युगल के दरवाजे यदि कोई साधु भुल से शीलव्रत देने चला जाये; तो साधु घर में और भव्य बाहर या भव्य घर में और साधु बाहर , ऐसी दोनों की आँख-मिचौली चलने लगती है। जब वह साधु अन्यत्र विहार कर जाता है; तब कहीं उस गृहस्थ

को शान्ति प्राप्त होती है।सोचता है.....'चलो, जान बची लाखों पाये।' साधु मुनिराज उसकी अज्ञानता पर तरस खाते हुऐ, उसे दयनीय समझकर उसे छोड़ जाते हैं।

तो यह है संसारी जीव की विचित्र स्थिति। भाई! जरा सोचो तो सही कि क्या निर्णय लेना है। संसारी जीव के बाह्य शत्रु उतने घातक नहीं है; जितने आन्तरिक शत्रु। कहा भी है—

कामारि क्रोध कुमति कटुत्वं, छद्मत्व क्लेशं कलहं तथा च।
विहाय एतानि जयन्तसेन:, उत्तीयतां नौ स्वभवार्णवाद् हि।

काम क्रोध, कुमति कटुता, छद्म तथा कलह हमारे शत्रु है। इनका त्याग करके ही भवसागर की यात्रा नाव रुप वीतराग की शरण से पार हो सकती है। अत: मन को एकाग्र करना सबसे कठिन तपस्या है। कहा भी है—

मन साध्युं तेणे सघळुं साध्युं एह् वात नहिं खोटी।
जिसने मन को जीत लिया, उसने संसार को जीत लिया।

सुहाग रात विजय और विजया के लिए एक मंगल वरदान बन गई। उसी रात को दोनों ने गुप्त वैराग्य धारण कर लिया। लोगों की नजर में वे गृहस्थ थे और स्वयं की नजर में वैरागी। इस प्रकार से दोनों अपना जीवन सुख-सन्तोष पूर्वक बिताने लगे।

एक बार चंपा नगरी में परम ज्ञानी श्री विमल केवली भगवान का आगमन हुआ। वे नगर के बाहर किसी एक उद्यान में विराजमान हुए। केवली भगवान की परम पावन मंगलमयी सुमधुर देशना श्रवण कर नगरवासी धन्य हो गए। देशना और दर्शन दोनों पाकर वे निहाल हो गये। श्रावक जिनदास भी वहाँ भगवान की देशना सुनने आया था। भगवान की देशना समाप्त होते ही प्रभु को वन्दन कर हाथ जोड़ कर वह खड़ा हो गया और बोला, "प्रभो! मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं आपके चौरासी हजार श्रमणों को आहार-पानी वहोरा कर अपने तप का पारणा करूँ। यह मेरा अभिग्रह है। आप मुझ पर कृपा कीजिये और यह लाभ मुझे लेने दीजिये।"

इस पर भगवान बोले, "जिनदास! तुम्हारी भावना अति उत्तम है; पर इतने सारे

मुनि एक साथ मिलना मुश्किल है। यदि सौभाग्य से ऐसा अवसर प्राप्त हो भी जाए, तो भी इतने श्रमणों के लिए शुद्ध आहार की व्यवस्था मुश्किल है। साधु केवल एक ही घर से सब आहार ले नहीं सकता। उसे बयालीस दोष टालकर निर्वद्य आहार-पानी ग्रहण करना पड़ता है। अत: ऐसा हो नहीं सकता। सब के सब श्रमण तुम्हारे घर से आहार ले नहीं सकते।"

जिनदास के मुख पर इस उत्तर से कुछ उदासी छा गयी। वह पुन: बोला, "प्रभो! तो फिर अन्य कोई उपाय बताईये। चौरासी हजार श्रमणों को आहार- पानी वहोराने से जो लाभ प्राप्त होता है, वह मैं पाना चाहता हूँ"

भगवान ने जिनदास को ढाढ़स बंधाते हुए कहा— "जिनदास! एक उपाय है। वत्स देश के कौशांबी नगर में सेठ अर्हद्दास रहते हैं। यदि तुम उनके पुत्र व पुत्रवधु को भोजन करा दो और उनका सत्कार कर दो, तो तुम्हें चौरासी हजार श्रमणों का आहार-पानी वहोराने से मिलने वाला लाभ प्राप्त हो जायेगा। उन दोनों के समान दुष्कर शील तप करने वाला संसार में मिलना मुश्किल है। उनके नाम है विजय और विजया।"

भगवान ने विजय और विजया के शील को भरी सभा में बेदाग प्रमाणित कर दिया। अहो, इस शील का कितना माहात्म्य है। आगम में कहा है कि जितना लाभ चौरासी हजार श्रमणों को आहार दान करने से होता है;उतना ही लाभ कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष में अखंड शीतव्रत का पालन करने वाले दंपति को भोजन कराने से होता है!

कलावती के कटे हाथ पुन: बेरखों सहित ठीक हो गये थे। कौन-सा मंत्र था उसके पास? केवल शीलव्रत का।

सुदर्शन सेठ को ले गये थे शूली पर चढ़ाने के लिए पर शूली उनके लिए सिंहासन बन गयी। क्योंकर हो गया यह चमत्कार? केवल शील के प्रभाव के कारण ही न?

शीलार्णवस्य पारं गत्वा संविज्ञ सुगम मार्गस्य।
धर्मध्यान मुपगतो वैराग्यं प्राप्नुयाद्योगम्॥

शील समुद्र में अवगाहन कर उसके पार जाकर वैराग्य भाव से मुक्त होकर

धर्मस्थान में लीन होना ही सच्चा मोक्षमार्ग है।

इन्द्रियों की भूख तीन लोक के समस्त वैभव से भी मिट नहीं सकती और उनकी प्यास समुद्र के समान कभी भरती ही नहीं है; अत: भोगों से तृप्त होकर शील पालन की कामना करना मृगजल से प्यास बुझाने के समान ही है।

सरित्सहस्र दुष्पूर समुद्रोदर सोदर: ।
तृप्तिमान्नेन्द्रिय ग्रामो भव तृप्तोऽन्तरात्मना ।।

हजारों नदियों के पानी से भी समुद्र कभी भरता नहीं है। यह इन्द्रिय समूह भी समुद्र के समान सदा अतृप्त ही रहता है; इसलिए तू अपनी अन्तरात्मा से ही तृप्त हो जा।

विषयों का करके वमन, रहते जो संसार।
जयन्तसेन निर्मल गति, आखिर भवजल पार।।

बिना विषयों का वमन किये भवव्याधि कभी दूर नहीं हो सकती। जैसे बिना वमन के पित्त रोग दूर नहीं होता, उसी प्रकार बिना विषयों को उगले आत्मा कभी निरोग नहीं हो सकती। भवरोग को दूर करने के लिए विषय विष को उगलना और धर्मामृत को निगलना अत्यंत आवश्यक है।

जो मनुष्य विषयों को नष्ट करके जिन के शील धर्म का उद्धार करता है; वह इस लौकिक और पारलौकिक वैभव को अवश्य प्राप्त करता है। विषय तो विष से भी अधिक घातक होते हैं।

विषस्य विषयाणां च पश्यतां महदन्तरम्।
उपभुक्तं विषं हन्ति विषया: स्मरणदपि।।

अरे विष और विषय के इस विशाल अन्तर को तो देखो। दोनों में महदन्तर है। विष तो भक्षण करने के पश्चात् मारता है, पर विषय स्मरण मात्र से ही मार देते हैं। विषय विष से अधिक घातक है।

काम पाश में जो पड़े, जीव न सुखी कोय।
जयन्तसेन तज वासना, सफल जीवन सुख होय।।

जब तक इन्द्रियों को नियंत्रित नहीं किया जाता, तब तक मृत्यु भय दूर नहीं

होता। कछुआ जब तक अपना मुख और अपने पाँव भीतर रखता है, तभी तक वह सुरक्षित है! इन्द्रियों के संवरण के पश्चात् ही तप, त्याग, दान आदि को मूल्य प्राप्त होता है और जीवन में सिद्धि भी प्राप्त होती है।

इन्द्रिय दमन किये बिना, काज सफल नहीं होत।
जयन्तसेन दमन कर, प्रगटे आतम ज्योत॥

ज्योति को स्नेह की आवश्यकता होती है। इस आत्म ज्योति को भी प्रज्ज्वलित रहने के लिए शील स्नेह की आवश्यकता है। जब तक जीवन में शील स्नेह है, तब तक यह ज्योति सदा जगमगाती रहेगी। शील का स्नेह आत्मज्योति को प्रज्ज्वलित रखता ही है। वृद्धावस्था तो एक प्रकार से जीवन का अन्त है। उस अवस्था में शील स्नेह इतना काम नहीं देता, जितना युवावस्था में देता है। अतः जब तक इन्द्रियाँ कार्यक्षम है, तब तक ही धर्म लाभ ले लेना चाहिये।

'निर्वाण दिपे किमु तैलदानम्।'

दीपक बुझ जाने पर तेलदान कोई अर्थ नहीं रखता।

श्री विमल केवली भगवान के मुखारविन्द से विजय-विजया का चरित्र गान श्रवण कर सेठ जिनदास बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके मन में उस अनोखे दंपति के दर्शन की उत्कंठा जागृत हो गयी वह तुरन्त कौशांबी की ओर रवाना हुआ।

कौशांबी पहुँचते ही वह सीधे सेठ अर्हद्दास के घर पहुँचा। उसने हाथ जोड़ कर अर्हद्दास से कहा — "सेठ साहब! आप धन्य हैं। आपका घराना ऊँचा है। आपके सुपुत्र ने आपके वंश को बहुत ऊँचा उठाया है। स्वयं विमल केवली भगवान ने उनकी प्रशंसा की है। मैं स्वयं उनके दर्शन के लिए आपके दरवाजे तक आया हूँ।"

अर्हद्दास बोले — "भाई! आप तो पहेली बुझा रहे हैं। आपकी बात मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। कृपया साफ-साफ बताइये कि बात क्या है?"

इस पर जिनदास ने कहा— "सेठ साहब! विजय और विजया जैसे रत्नदीप आपके घर को तो प्रकाशित कर ही रहे हैं, पर वे दूर देशों में भी अपने निष्कलंक अनुपम शील तेज का प्रकाश फैला रहे हैं। उसी ज्योति के प्रभाव से मैं उनके दर्शन के लिए यहाँ आया हूँ। वे विवाहित होते हुए भी अविवाहित हैं, भोगी

दृश्यमान होते हुए भी अनुत्तर योगी हैं। विजय कृष्णपक्ष में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और विजया देवी शुक्ल पक्ष में। ये दंपत्ति अखंड शीलव्रतधारी हैं। इनके कारण आपका गृह धर्ममन्दिर बन गया है। यहाँ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि जीवनमूल्यों का पालन किया जाता है।

आपका यह गृह गंगा-सा निर्मल है, जहाँ अनुपम शीलव्रतधारी रत्न शोभायमान है। मेरी भावना थी कि मैं चौरासी हजार मुनियों को आहार वहोराकर धर्मलाभ उपार्जन करूँ; पर ऐसा संभव नहीं था। केवली भगवान ने मेरी यह समस्या हल कर दी। उन्होंने कहा कि विजय और विजया का भोजनादि से सत्कार करने पर मुझे वह लाभ मिल सकता है। अतः आप मुझ पर अनुग्रह किजिये और मुझे साधर्मिक भक्ति का लाभ लेने दीजिये।''

अर्हद्दास सेठ ने जिनदास की भावना को मान दिया। जिनदास ने बड़े भक्तिभाव से दंपति का आहारादि से सत्कार किया और परम सन्तुष्ट हो कर अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

अब तो रहस्य प्रकट हो चुका था, अतः उन दोनों ने प्रकट रूप से चारित्र ग्रहण करने का निर्णय ले लिया। क्योंकि—

ज्ञाने तपसि चारित्रे, सत्येवास्योप जायते।

विशुद्धिस्तदतस्तस्य, तथा प्राप्तिरिहेष्यते॥

ज्ञान, तप और चारित्र के कारण आत्मा की विशुद्धि होती है। संसार में रहते हुए इनकी आराधना सम्यक् रूप से नहीं हो सकती, क्योंकि गृहस्थ जीवन में प्रतिक्षण इनमें अन्तराय की संभावना बनी रहती है। मोक्ष ही जीव का परम और चरम गन्तव्य है, क्योंकि इसके बिना जीव का संसार भ्रमण नहीं रुकता। अतः महाव्रत पालन रूप भागवती प्रव्रज्या जीवन में अत्यन्त आवश्यक है।

कृत्स्न कर्म क्षयान्मोक्षो, जन्म मृत्स्वादि वर्जितः।
सर्व बाधा विनिर्मुक्तः, एकान्त-सुख-सङ्गतः॥

संपूर्ण कर्मक्षय से जन्म-मृत्यु वर्जित समस्त बाधाओं से मुक्त और एकान्त सुख रूप मोक्ष प्राप्त होता है।

मोक्ष एक अनिर्वचनीय सुखावस्था है। उसमें न भूख है, न प्यास, न तृष्णा है

न वितृष्णा और न जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु ही। वहाँ केवल स्वाधीन अविनाशी सुख ही विद्यमान है। वह सुख आत्मा के अनन्त चतुष्टय के पूर्ण प्रकटीकरण के कारण होता है। वह भयमुक्त होता है।

अपरायत्तमौत्सुक्य रहितं निष्प्रतिक्रियम्।
सुखं स्वाभाविकं तत्र, नित्यं भयविवर्जितम्।।

मुमुक्षु विजय अपनी पत्नी के साथ अपने पिता के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसने पिता से कहा— "हे पिताजी! हम दोनों संयम ग्रहण करना चाहते हैं, अतः आप हमें अनुमति प्रदान कीजिये।" इसी प्रकार का निवेदन उसने अपनी माता से व अन्य आप्त जनों से भी किया।

"अनुमति" शब्द उच्चारण में जितना सरल है, उसे अमल में लाना उतना ही मुश्किल है। यदि मित्रता एक दिन की भी हो, तो भी विरह दुःसह हो जाता है, तो जिन आप्त जनों के बीच जीव छोटे से बड़ा हुआ हो, उसे सदा के लिए दूर जाने की अनुमति देना कितना मुश्किल होता है, यह तो भुक्त भोगी ही जान सकता है। सच ही तो है — 'जौहरि की गति जौहरि जाने।'

जो स्त्री जौहर करती है, वही जौहर करनेवाली का दुःख जान सकती है, अन्य कोई नहीं।

कन्या ससुराल के लिए बिदा होती है, तब माता-पिता का कलेजा उसे बिदा देते समय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। हृदय की वेदना आँखों से आँसू बनकर बाहर आ जाती है। विजय-विजया जैसे गुणवान दंपति को मोक्ष मार्ग की ओर बिदा करते समय उनके माता-पिता की क्या स्थिति हुई होगी, यह सहज ही समझ में आ सकता है।

पिता ने कहा – "पुत्र! तुम दोनों बड़े भाग्यशाली हो, जो संयममार्ग के पथिक बनने जा रहे हो। सच तो यह है कि हम दोनों को इस मार्ग की ओर प्रयाण करना चाहिये था, पर हम कमजोर हैं। यह संयम का मार्ग बड़े भाग्य से और पूर्व पुण्योदय से ही प्राप्त होता है। तुम दोनों धन्य हो। 'शुभास्तु ते पन्थानः।'

सूनो बहू! जिसने महामंत्र नवकार को और अरिहन्त परमात्मा को अपने हृदय का हार बनाकर चारित्र ग्रहण किया है, वह अवश्य ही भवसागर से पार हो जायेगा, इसमे कोई सन्देह नहीं है। तुम भी सदा नवकार मंत्र के ध्यान में रत रहते

हुए चारित्र पालन करके भवसागर से पार हो जाओ। तुम लोग ज्ञान के समग्र प्रकाश से प्रकाशित बनो। तुम्हारे अज्ञान मोह का विसर्जन हो जाये, यही मेरी मंगल कामना है।

नाणस्स मोहस्स पगासणाए, अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संख एगं, एगंत सोक्ख समुवेइ मोक्खं।।

मोक्ष एकान्त सुख प्रदान करता है। जाओ तुम लोग सत्य का अनुसंधान कर अपने जीवन को सफल बनाओ।

अप्पणा सच्च मेसेज्जा, न य दुग्गहियं कहं कहेज्जा।

विग्रहों से दूर रह कर आत्मानुशीलन करते हुए तुम लोग स्वयं का जीवन तो सार्थक करो ही, पर अन्य जीवों का भी कल्याण करना।

मैं तुम्हें बिदा देता हूँ।' शुभास्तु ते पन्थानः।' आप लोगों का मार्ग प्रशस्त हो।"

बड़ी धूमधाम से महामहोत्सवपूर्वक उन दोनों की भागवती प्रव्रज्या संपन्न हुई। किसी दिन उनके विवाह की शहनाई बजी थी, तो आज उनके महाभिनिष्क्रमण की शहनाई बज उठी।

यह महोत्सव उस दिन के महोत्सव से अलग प्रकार का था। इसकी अपनी अलग ही विशेषता थी। वह बन्धन का महोत्सव था यह मुक्ति का, जिसके लिए देवगण तक तरसते हैं। प्रबल पुण्योदयवाला ही संयम ग्रहण कर सकता है। आज उन्हें उस सौन्दर्य की उपलब्धि हो रही थी, जो कभी भी फीका पड़ता नहीं है। उत्कृष्ट चारित्र पालन के सुख की बराबरी बेचारा भवभ्रमण भरा सुख कैसे कर सकता है। संसार सुख सान्त है और जाते वक्त दुःख रखकर जानेवाला है। चारित्र पालन से प्राप्त होनेवाला सुख ऐसा है कि जिससे मृत्यु स्वयं हार जाती है और चिर शाश्वत अमरत्व प्राप्त हो जाता है।

तू मरता कटता नहीं, जलता नहीं महाभाग!
जयन्तसेन तू अमर है, तज मद माया राग।।

उन दोनों ने दीक्षा के पश्चात् पाँच साथी अपने संग ले लिए - सरल हृदय, सद्भाव, स्नेह, सुमति और सहकार।

सरल हृदय, सद्भावना, स्नेह, सुमति सहकार।
जयन्तसेन निज मार्ग में, सुखदा पाँच सकार।।

संयम ग्रहण के पश्चात् वे दोनों धर्म के क्षेत्र में अपने-अपने गन्तव्य की ओर पृथक्-पृथक् चल दिये। यद्यपि दोनों का उद्देश्य एक ही था, फिर भी भौतिक रूप से उन्होंने अपना-अपना मार्ग अलग कर दिया और वे साधना मार्ग की ओर अग्रसर हो गये।

प्रिय पाठक! अपनी जीवनगाथा जो इस लोकाकाश में अमर कर गये, उनके गीत हम आज भी गाते हैं। वे अमर हो गये, पर आज भी इस अज्ञान के अन्धकार में भटक रहे जीवों को ध्रुवतारे के समान वे मार्गदर्शन व दिशादर्शन कर रहे हैं। धन्य है उनका शील! अनुकरणीय है उनका आचरण!

जिस हिम्मत के साथ उन्होंने व्रत लिया, उसी हिम्मत के साथ उन्होंने व्रत का पालन करके भी दिखा दिया। उन्होंने परमात्मा की शिक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सफल बनाया।

शिक्षा गमोपदेशश्रवणान्ये कार्थिकान्यधिगस्य।
एकार्थ परिणामो भवति निसर्ग स्वभावश्च।।

जो मुनि जिनोक्त शिक्षा ग्रहण करते हैं और आगम का उपदेश सुनते हैं, वे प्रशम सुख के अधिकारी होते हैं।

प्रशमाव्याबाध सुखाभिकाङ्क्षिणः सुस्थितस्य सद्धर्मे।
तस्य किमौपम्यं स्यात्, सदेव मनुजेऽपि लोकेऽस्मिन्।।

प्रशमसुख के आगे ऊँचे से ऊँचा देवलोक का सुख भी तिनके के समान है। स्वर्ग के सुख तो परोक्ष है और मोक्ष का सुख उससे भी परोक्ष है जबकि प्रशम सुख प्रत्यक्ष है, इसी जन्म में स्वाभावानुगम्य है। यह सुख किसी की भी अपेक्षा नहीं रखता और न ही इसके लिए कुछ व्यय ही करना पड़ता है।कहा भी है—

स्वर्ग सुखानि परोक्षाण्यत्यन्त परोक्षमेव मोक्षसुखम्।
प्रत्यक्षं प्रशम सुखं न परवशं न व्यय प्राप्तं।।

अतः यह मुनि जीवन कितना मूल्यवान है! जरा सोचो तो सही। थोड़ा-सा आत्मविश्लेषण भी करो। खाना, पीना, जीना, संसार करना ये सब व्यवहार तो पशु भी करते हैं, फिर मनुष्य में और पशु में क्या अन्तर रहा? मनुष्य जन्म प्राप्त

करने के बाद भी यदि केवल इतना ही काम करते रहे, तो समझ लो कि जीवन की बाजी हार गये। लाख मोल का रतन गँवा बैठे।

यह मन मर्कट-सा चंचल है। इसे बाँधकर रखो। इसे संयम की डोरी से बाँधो।

स्वच्छन्दी मन मत रखो, मन मर्कट सा जान।
जयन्तसेन मन वश करो, तब होगा कल्याण॥

एक किशोर युगल की यह अमर गाथा युगों-युगों तक मानव को शीलपालन का अमर सन्देश सुनाती रहेगी और कई जीवों का कल्याण करेगी। आवश्यकता है विचारपूर्वक और तन्मयतापूर्वक इस गवाक्ष में झाँकने की। कबीर ने ठीक ही कहा है —

'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।'

अत: अपनी निर्मल बुद्धि में संयम ग्रहण और पालन का लक्ष्य बनाये रखना ही अपने लिए उचित है। संसार का यह विभ्रम सुख कभी किसी को सुखी नहीं बनाता।

परिजन पैसा पत्नि अरू पद-प्रतिष्ठा भूख।
जयन्तसेन जग में सदा, इनसे आखिर दु:ख॥

हमेशा कर्मों का क्षय करने की बात सोचो। कर्म निर्जरा के मार्ग में आस्रव और बंध से बचते हुए आगे बढ़ो। यह संसार का सुख कर्मपाश में जकड़ने वाला है और आस्रव तथा बंध का कारण है। निवृत्ति मार्ग में जितने आगे बढ़ोगे, उतनी ही मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त्रि बढ़ेगी।

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा

तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती, हम ही बूढ़े होते है। 'तृष्णैका तरुणायते' - तृष्णा तो सदा जवान बनी रहती है।

इच्छा पूरी कब हुई, इच्छा करो निरोध।
जयन्तसेन निरोध से कर्मों का अवरोध॥

यह छोटी-सी कथा एक महान आत्मज्योति की लघुकिरण है। सामान्य से सामान्य घटना भी बड़ा से बड़ा परिणाम उत्पन्न कर सकती है। मात्र चाहिये विलक्षण मनोयोग से चिन्तन की प्रवृत्ति। फिर तुम्हें मालूम होगा कि कथा-सागर में ऐसे कितने सारे मोती भरे पड़े हैं।

गोताखोर चाहिये, फिर तो बस मोती ही मोती हैं।

इतिशुभम्

साहित्य मनिषी आचार्य देव श्रीमद्विजय जयंतसेनसूरीश्वरजी द्वारा लिखित / सम्पादित उपलब्ध साहित्य आज ही मंगवाइये।

पुस्तक	मूल्य
* नमो मन से नमो तन से नवकार पर आधारित प्रवचनों का सुन्दर संकलन (द्विरंगी मुद्रण)	पांच रूपये
* जीवन ऐसा हो (मार्गानुसारी के पेंतीस गुणों का वर्णन, द्विरंगी आकर्षक मुद्रण)	पांच रूपये
* जयन्तसेन सतसई (विविद विषयों पर ७०७ दोहों का संकलन)	चार रूपये
* ज्योतिष प्रवेश (ज्योतिष सम्बन्धी प्रारंभिक जानकारी)	सात रूपये
* नवकार गुण गंगा (नवकार पर सुन्दर / भाववाही स्तवनों का संकलन)	पांच रूपये
* चिर प्रवासी (जीवन यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर उपदेशात्मक मुक्तक)	चार रूपये
* गुरूदेव पुष्पांजलि (श्रद्धेय गुरूदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के भक्ति गीतों का संग्रह)	तीन रूपये
* तीर्थ - वंदना (विविध तीर्थों के मूलनायक भगवंतों के स्तवन)	तीन रूपये
* भगवान महावीर ने क्या कहा ? (हिन्दी/गुजराती) (आगम ग्रन्थों से चुनी हुई २५० सुक्तियों पर सुन्दर विवेचन)	बीस रूपये
* भक्ति सागर (स्तवनों का संकलन)	दो रूपये
* अरिहंते शरणं पवज्जामि (हिन्दी/गुजराती)	दस रूपये
* यतीन्द्र मुहुर्त दर्पण (मुहूर्त संबंधी वृहद् संकलन)	इक्कावन रूपये
* भक्ति प्रदीप (स्तवन)	दो रूपये
* हेम मुक्ति स्वयं सुधा (गुजराती)	पांच रूपये
* नवकार आराधना (हिन्दी / गुजराती) (नवकार पर मननीय प्रवचन)	पांच रूपये
* अष्टान्हिका व्यख्यानम् (पर्युषण व्याख्यान)	दस रूपये
* जिनेन्द्र पूजा संग्रह (वृहद्) (गुजराती) (विविध पूजायें रंगीन चित्रो के साथ)	इक्कीस रूपये
* जिनेन्द्र पूजा संग्रह (लघु) (विविध पूजाये रंगीन चित्रो के साथ)	दस रूपये
* पंचप्रतिक्रमण विधी सह (पॉकेट साईज) (प्रतिदिन आवश्यक क्रिया में उपयोगी)	दस रूपये

उपरोक्त पुस्तकें मंगवाने हेतु मूल्य के साथ प्रति पुस्तक पोस्टेज एक रूपया जोड़कर मनीआर्डर निम्नांकित पते पर भिजवायें —

शाश्वत धर्म कार्यालय, जामली नाका, थाने - ४०० ६०१ (महाराष्ट्र)

'शाश्वत धर्म

सम्पादक : जे. के. संघवी

★ शाश्वत धर्म कार्यालय
जामली नाका - **थाना** (महाराष्ट्र) ४०० ६०१.